गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्धान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है।

पिछले कुछ वर्षों से जलवायु परिवर्तन का मुद्दा पूरे विश्व में प्रमुखता से छाया हुआ है। धरती का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है। यह सभी के लिए चिन्ता का विषय है। भारत की चिन्ता अपनी आधारभूत व्यवस्था अर्थात् कृषि को लेकर है, जिस पर हमारे देश में 70 प्रतिशत लोगों का जीवन यापन निर्भर है।

प्रस्तुत पुस्तिका जलवायु परिवर्तन एवं कृषि पर पड़ने वाले उसके प्रभावों के सन्दर्भ में तैयार की गई है। आशा है यह, इस क्षेत्र से जुड़े लोगों व संस्थाओं के लिए सहायक सिद्ध होगी।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
पोस्ट बाक्स नं० 60, गोरखपुर-273001, उ०प्र०
फोन : 0551 2230004, फैक्स : 0551 2230005
ई-मेल : geag2@sancharnet.in, geag_india@yahoo.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

जलवायु परिवर्तन एवं कृषि

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप

कुछ मुख्य इस प्रकार हैं–

1. फसल उत्पादन हेतु नई तकनीकों का विकास: फसलों के सुरक्षित व समुचित उत्पादन हेतु ऐसी किस्मों की खेती को बढ़ावा देना होगा जो नई फसल प्रणाली व नये मौसम के अनुकूल हो। इसके लिए ऐसी किस्मों को विकसित करना होगा जो अधिक तापमान, सूखा और पानी में डुबाव होने पर भी सफलतापूर्वक उत्पादन कर सकें।

आने वाले समय में ऐसी किस्मों की जरुरत होगी जो उर्वरक और सूर्य – विकिरण उपयोग के मामले में अधिक कुशल हों। लवणीयता और क्षारीयता को सहन करने वाली किस्मों को भी ईजाद करना होगा। अनेक पारम्परिक व प्राचीन प्रजातियां ऐसी मौजूद है, उन्हें ढूंढना होगा व उनका संरक्षण करना होगा।

2. सस्य विधियों में परिवर्तन : नई फसल और नये मौसम के अनुसार हमें बुआई के समय में भी बदलाव लाने होंगे ताकि तापमान का प्रभाव कम हो। फसलों के कैलेण्डर में कुछ बदलाव लाकर गर्म मौसम के प्रकोप से बचना व नम मौसम का अधिक उपयोग करना उचित होगा। मिश्रित खेती व इन्टरक्रापिंग करके जलवायु परिवर्तन से निपटा जा सकता है। कृषि वानिकी अपनाना जलवायु परिवर्तन की अच्छी काट साबित होगी। यह केवल वातावरण में मौजूद कार्बन को सोखने का काम ही नही करेगी वरन् इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ेगी व आर्थिक – सामाजिक लाभ भी प्राप्त होगा।

3. खेतों में जल का संरक्षण : तापमान वृद्धि के साथ – साथ धरती पर मौजूद नमी समाप्त होती जाएगी ऐसे में खेतों में नमी का संरक्षण करना और वर्षा जल को एकत्र कर सिचांई हेतु उपयोग में लाना आवश्यक होगा। जीरो टिलेज या शून्य जुताई जैसी तकनीकों का इस्तेमाल कर पानी के अभाव से निपटा जा सकता है। शून्य जुताई के कारण धान और गेहूँ की खेती में पानी के मांग की कमी देखी गई है जबकि उपज में बढ़ोत्तरी हुई है और उत्पादन लागत 10 प्रतिशत तक कम हो गया है। इससे मिट्टी में जैविक पदार्थो की बढ़ोत्तरी भी होती है।

इसी प्रकार ऊँची उठी क्यारियों में रोपाई करना भी एक बेहतरीन तकनीक है, जिसमें पानी के उपयोग की क्षमता बढ़ जाती है। जलभराव कम होता है, खरपतवार कम आते हैं, लागत कम लगता है व लाभ ज्यादा होता है।

> **एक अनुमान के अनुसार देश में प्रतिवर्ष लगभग 20 करोड़ टन कचरा बायोमास पैदा होता है जो मानव व पशुओं के लिए उपयुक्त नहीं है। इसका उपयोग जैव ऊर्जा हेतु किया जा सकता है।**

4. समग्रित खेती : आज खेती की सबसे बड़ी मांग यही है। जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से खेती में विविधता तथा फसलों के साथ वृक्षों व जानवरों का संयोजन बहुत मायने रखता है। अब तक अनुभवों तथा अध्ययनों में भी यह पाया गया कि जहाँ समग्रता थी वहाँ नुकसान का प्रतिशत कम रहा जबकि जहाँ एकल फसलें अथवा केवल पशुओं पर निर्भरता थी वहाँ नुकसान ज्यादा हुआ। खेती में समग्रता किसान को आत्म निर्भर बनाती है, बाजार पर उसकी निर्भरता कम होती है तथा कठिन समय में भी उसकी खाद्य सुरक्षा बनी रहती है क्योंकि एक अथवा दो गतिविधियों के नुकसान से पूरी प्रक्रिया नष्ट नहीं होती। खेती में समग्रता अर्थात घर – पशुशाला – खेत के बीच उचित सामञ्जस्य व इनकी एक दूसरे पर निर्भरता। आज जलवायु परिवर्तन से होने वाले कृषि के नुकसान को कम करने के साथ ही कृषि द्वारा किये जाने वाले गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने में भी समग्र खेती मददगार साबित हो रही है।

इस प्रकार जैविक अथवा स्थाई कृषि अपनाकर कृषि द्वारा होने वाले ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है और पर्यावरण को समुचित लाभ पहुँचाया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन एवं कृषि

संकलन
डा० सीमा त्रिपाठी

लेआउट व टाईप सेटिंग
राजकान्ती गुप्ता

आवरण पृष्ठ
राजेश गुप्ता

जनवरी, 2009

प्रकाशन

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप

पोस्ट बाक्स नं० 60, गोरखपुर -273001

फोन : (0551) 2230004, फैक्स : (0551) 2230005

ई-मेल : geag2@sancharnet.in, geag_india@yahoo.com

वेबसाइट : www.geagindia.org

आमुख

भारत और विशेषतः गंगा के मैदानी क्षेत्रों में लोगों की आजीविका आज भी कृषि पर आधारित है। यही वह क्षेत्र है, जहाँ समय के साथ कृषि को समर्थन देने वाली स्थितियाँ बदतर होती जा रही हैं। यह वह क्षेत्र भी है, जहाँ कृषि प्रमुखतः मौसम पर निर्भर है।

मौसम के बदलाव सर्वत्र अनुभव किये जा रहे हैं पर इनका प्रभाव प्रकृति आधारित कृषि पर सर्वाधिक है। ऐसे में छोटी किसानी व कृषि से जुड़ी अर्थव्यवस्थाओं पर आधारित लोगों की आजीविका के सामने नयी चुनौतियाँ खड़ी हो रही हैं।

जलवायु परिवर्तन के कारणों की ओर नजर डाली जाये तो इसमें कृषि से जुड़ी गतिविधियां भी हैं। जीवाष्म ईंधन का अत्यधिक उपयोग, सिंचाई एवं बिजली की अधिक खपत, फसल अवशेषों को जलाना, अति सिंचाई आदि ऐसी अनेक प्रचलित प्रवृत्तियाँ हैं, जो जलवायु परिवर्तन में अपना योगदान करती हैं। जहाँ ऐसे कारणों को समझते हुए इन्हें रोकने के प्रयास जरूरी है, वहीं जलवायु से होने वाले प्रभावों से निपटने हेतु भी तैयार होना होगा। छोटी किसानी को जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से बचाने हेतु प्रयास किये जाने जरूरी हैं।

इन तथ्यों व विश्लेषणों के आधार पर जन सामान्य व कृषि से जुड़े लोगों की जागरूकता व चिन्तन हेतु यह संकलन तैयार किया गया है।

डा० शीराज़ अ० वजीह

अध्यक्ष

विषय सूची

1. **प्रस्तावना**.....1-2
2. **क्या है जलवायु परिवर्तन**..... 3-6
   क्या है ग्रीन हाऊस गैस ?
3. **जलवायु परिवर्तन के कारण**..... 7-10
   प्राकृतिक कारण
   मानवीय कारण
4. **जलवायु परिवर्तन के प्रभाव**.....11-14
   समुद्र का जल स्तर बढ़ना
   आपदाओं की संख्या में वृद्धि
   जलवायु परिवर्तन व बाढ़
   जलवायु परिवर्तन व सूखा
5. **जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव**.....15-20
   आखिर कृषि पर ही क्यों ?
   फसलों पर प्रभाव
   पशुओं पर प्रभाव
   जल संसाधन पर प्रभाव
   मिट्टी पर प्रभाव
   रोग व कीट पर प्रभाव
6. **जलवायु परिवर्तन में कृषि की भूमिका**..... 21-23
   मीथेन गैस का उत्सर्जन
   नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन
   कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन
   फसल अवशेष जलाने का प्रभाव
7. **कैसे कम हो सकता है ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन ?**..... 24-28
   फसल चक्र व खेत का तंत्र
   पोषक तत्व व खाद प्रबन्धन
   पशु प्रबन्धन व चारागाह
   मिट्टी की उर्वरता व बंजर भूमि का जीर्णोद्धार
   प्रभाव कम करने के कुछ अन्य उपाय

1

प्रस्तावना

समाचारों के अंश.....

- **जलवायु परिवर्तन होने व गर्मी बढ़ने से अफ्रीकी महाद्वीप का एक बहुत बड़ा भाग अकाल की चपेट में है...**
- **पृथ्वी की कुल बर्फ का 91 प्रतिशत हिस्सा अपने पास रखने वाला अंटार्कटिक हिम क्षेत्र पिछले पाँच सालों में 3000 वर्ग किमी० सिकुड़ गया है...**
- **यूरोपीय देशों में गेहूँ की उपज गिर जाने के कारण वहाँ से इसका निर्यात बन्द होने लगा है...**
- **यूरोप में 48डिग्री सेल्सियस तक चले गये तापमान और अगस्त माह में एक हफ्ते चली जबरदस्त लू में 35 हजार लोगों की जानें गयी...**
- **हिन्द महासागर क्षेत्र में आये समुद्री तूफान सुनामी में लगभग 2 लाख 28हजार लोग मारे गये...**
- **तापमान बढ़ने के कारण हिमांचल क्षेत्र की 40 से अधिक ग्लेशियर झीलें फटने के कगार पर हैं...**
- **जलवायु परिवर्तन होने तथा समुद्र में अम्लता बढ़ने के कारण 10 लाख से ज्यादा प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा है...**
- **इस सदी के अन्त तक समुद्रों का जलस्तर 7 से 23 इंच (18से 59 सेमी०) तक बढ़ सकता है। इससे दक्षिण पूर्व एशिया का विस्तृत भूभाग जलमग्न हो जायेगा...**
- **पर्यावरण प्रदूषण और तेजी से बदलते मौसम के कारण अनुमान है कि 2025 तक गंगोत्री हिमनदी पूरी तरह सूख जायेगी...**
- **अमेरिका की सरकारी एजेन्सी ने बताया है कि उत्तरी गोलार्द्ध में इस वर्ष सबसे ज्यादा गर्मी रिकार्ड की गई। पिछले 125 वर्ष में जाड़े के मौसम में इतनी गर्मी नहीं पड़ी थी...**
- **निरन्तर बढ़ते तापमान से भारत का गंगोत्री ग्लेशियर अगले 20-30 वर्षों में समाप्त हो सकता है। पिछले पांच वर्षों में ग्लेशियर 1 किमी० पीछे खिसक गया है...**
- **आई०पी०सी०सी० की रिपोर्ट के अनुसार भविष्य में पानी की किल्लत और बढ़ेगी लेकिन बाढ़ एक सामान्य समस्या होगी। बीमारियां तेजी से बढ़ेगीं और फसलों में लगातार कमी आयेगी...**

पिघलते ग्लेशियर, समुद्री तूफान, चक्रवात, भीषण बाढ़, लू का प्रकोप, जाड़ों में गर्म हवा, सूखा, भूकम्प, भूस्खलन, अकाल आदि अनेक आपदायें जलवायु परिवर्तन के कारण अब विकराल रूप में सामने आने लगी हैं। पृथ्वी के गर्म होने की रफ्तार हर साल बढ़ रही है। पिछली सदी के आखिरी दो दशक पिछले 400 सालों में सबसे गर्म दर्ज किये गये। आर्कटिक की बर्फ तेजी से गायब हो रही है और माना जा रहा है कि 2040 या इससे पहले ही यह पूर्णत: हिमरहित हो जायेगा।

> संयुक्त राष्ट्र संघ के एक अध्ययन के मुताबिक आगामी 20-30 सालों में भारत बढ़ते तापमान से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाले देशों में शुमार होगा।

यू०एन० की रिपोर्ट के मुताबिक भारत बढ़ते तापमान के लिहाज से ''गर्म स्थल'' है। इसके परिणाम स्वरूप यहाँ बाढ़, सूखा और तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं में तेजी आने की पूरी संभावना है।

हाल ही में जारी ''डिजास्टर मैनेजमेन्ट इन इण्डिया'' की रिपोर्ट के मुताबिक देश का 85 प्रतिशत हिस्सा एकाधिक आपदाओं के दायरे में आता है। 40 फीसदी जमीन सूखे के दायरे में आती है। पिछले 100 सालों के दौरान देश में बाढ़, सूखा, भूकम्प, तूफान, सुनामी और भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं का ग्राफ लगभग 100 प्रतिशत की रफ्तार से बढ़ा है। इससे न केवल भारी मात्रा में जान-माल का नुकसान हो रहा है बल्कि 1996से 2000 के बीच देश को सकल घरेलू उत्पाद का 2.25 प्रतिशत और राजस्व के 12.5 प्रतिशत हिस्से का नुकसान उठाना पड़ा।

अब तक बहुत से लोगों का मानना था कि धरती का गर्म होना एक अफवाह मात्र है लेकिन अब दुनिया भर के वैज्ञानिक यह मान चुके हैं कि धरती पिछले कई सालों से विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तन का संकेत दे रही है। 130 देशों के 2500 वैज्ञानिक गहन शोध के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि मौजूदा जलवायु परिवर्तन की मुख्य वजह मानवीय गतिविधियाँ हैं।

आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? क्यों मौसम में इतनी तेजी से परिवर्तन आ रहे हैं? क्या है जलवायु परिवर्तन? किसे कहते है ग्लोबल वार्मिंग? क्या प्रभाव पड़ेगा इसका हमारे देश पर? किस तरह के नुकसान हमें झेलने पड़ेगे? ऐसे अनेक प्रश्न हमारी जिज्ञासा को बढ़ाते हैं।

धरती के औसत तापमान में विचलन

(डिग्री सेल्सियस प्रति वर्ष)

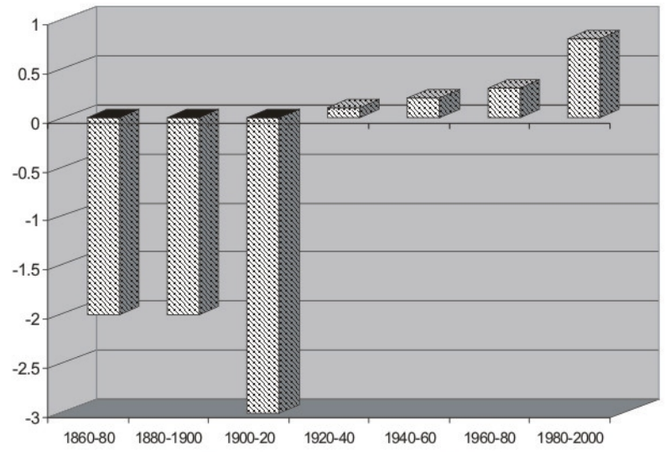

धरती का औसत तापमान लगातार बढ़ रहा है।

2 क्या है जलवायु परिवर्तन?

जब से इस धरती का निर्माण हुआ तभी से इसका एक अपना जलवायु तंत्र है। हर स्थान की अपनी एक निश्चित जलवायु होती है, जिसे वहाँ की वर्षा, धूप, हवा, तापमान, आर्द्रता आदि मिलकर निर्धारित करते हैं। जलवायु में कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है, जिससे कभी ठण्ड ज्यादा तो कभी गर्मी ज्यादा पड़ती है और धरती पर रहने वाले जीव-जन्तु उससे अपना सामंजस्य बनाते रहते हैं। पिछले 100-150 वर्षों से जलवायु में बहुत तेजी से परिवर्तन हो रहा है जिसकी वजह से बहुत से पेड़-पौधे और जीव-जन्तु इससे अनुकूलन नहीं बैठा पा रहे हैं। इसकी वजह वैज्ञानिकों ने ग्रीन हाऊस गैसों में बढ़ोत्तरी बताया है। हमारा वातावरण अनेक प्रकार की गैसों से मिलकर बना है-

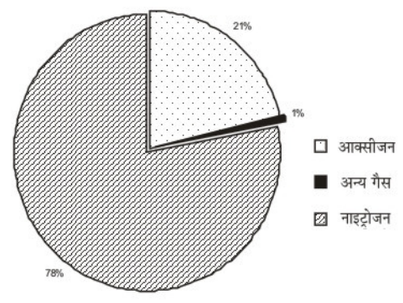

इसमें 1 प्रतिशत अन्य गैसों में ग्रीन हाऊस गैसें शामिल हैं जिनमें कार्बनडाईआक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, फ्लोरोकार्बन आदि हैं। यह ग्रीन हाउस पृथ्वी के लिए कवच के समान कार्य करती हैं। ये धरती की प्राकृतिक तापमान नियंत्रक हैं। अगर ये न होतीं तो हमारी धरती 40 डिग्री० सें०ग्रे०टी० से भी ज्यादा ठंडी होती, जितनी आज है उससे।

क्या है ग्रीन हाउस?

ग्रीन हाउस शब्द वनस्पति विज्ञान में व्यवसायिक पौध उत्पादन करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। यह एक तरह का पारदर्शी शीशे के घर जैसा होता है जिसे पौध उत्पादन के स्थान पर लगाया जाता है। ठंडक के समय में यह ग्रीन हाउस सूरज की किरणों से ऊर्जा खींच कर अन्दर करता है और तेज हवा व पाले से पौधों को सुरक्षित रखता है, जिससे वहाँ गर्मी बनी रहती है।

ठीक इसी प्रकार हमारे धरती के ऊपर ग्रीन हाउस गैसें एक परत के रूप में होती हैं जो धरती को गर्म रखती हैं और सूर्य की ऊर्जा को रोककर वापस धरती पर भेजती हैं, जिससे गर्मी बनी रहती है। यह परत कई प्रकार की गैसों से मिलकर बनी

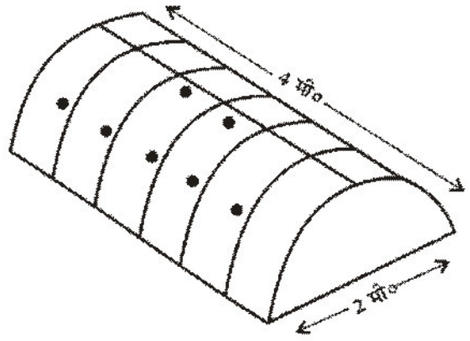

होती है जिन्हें ग्रीन हाउस गैस कहते हैं और इससे धरती पर पड़ने वाले प्रभाव को ''ग्रीन हाऊस प्रभाव'' कहते हैं।

ग्रीन हाऊस गैसों का प्रतिशत

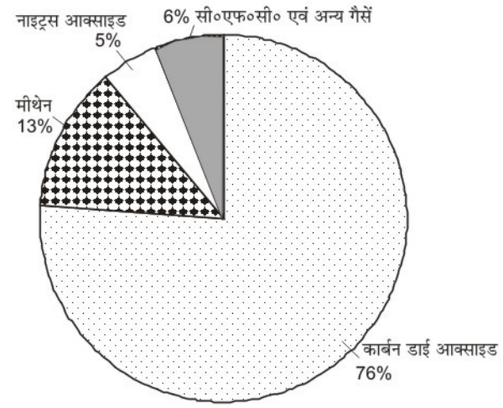

प्रमुख ग्रीन हाउस गैसों का विवरण इस प्रकार है–

1. कार्बन डाई आक्साइड (CO_2) : धरती के वातावरण में यह सबसे महत्वपूर्ण और सबसे ज्यादा मौजूद गैस है। प्रत्येक वर्ष मनुष्यों द्वारा 30 अरब टन कार्बन डाई आक्साइड वातावरण में छोड़ी जाती है। हम प्राकृतिक गैस, कोयला, तेल आदि का प्रयोग घर अथवा उद्योगों के लिए करते हैं। फॉसिल फ्यूल में कार्बन होता है जब यह आक्सीजन के साथ मिलकर जलता है तो कार्बन डाई आक्साइड पैदा होती है।

2. मीथेन (CH_4) : वातावरण की दूसरी महत्वपूर्ण गैस मीथेन है। यह पौधों के सड़ने से तथा जहाँ हवा बहुत कम होती है वहाँ पैदा होती है। इसे दलदली गैस भी कहते हैं क्योंकि यह पानी अथवा दलदल के इर्द-गिर्द उत्पन्न होती है। प्रत्येक वर्ष मनुष्यों द्वारा 300-500 करोड़ टन मिथेन वातावरण में छोड़ी जाती है। यह कार्बन डाइ आक्साइड से 20 गुना ज्यादा गर्मी रोकती है।

3. नाइट्रस आक्साइड (N_2O): तीसरी महत्वपूर्ण ग्रीन हाउस गैस नाइट्रस आक्साइड है। इसका प्रयोग मुख्यत: एनस्थीसिया (बेहोशी के लिए) देने में किया जाता है जिससे मरीज को दर्द न हो इसलिए इसे हँसने वाली गैस भी कहते हैं। यह गैस समुद्र और मिट्टी से प्राकृतिक रूप में निकलती है। प्रत्येक वर्ष मनुष्य 7-13 करोड़ टन नाइट्रस आक्साइड वातावरण में छोड़ते हैं।

4. फ्लोरो कार्बन : यह फ्लोरीन व कार्बन का समूह होता है। यह आसानी से तरल से गैस में तथा गैस से तरल में बदल जाती है। अपनी इसी विशेषता के कारण इसे रेफ्रिजरेटर एवं ए०सी० आदि में उपयोग करते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उत्सर्जन से पृथ्वी के ओजोन परत को नुकसान पहुँचता है, जिससे अल्ट्रावायलेट किरणों के धरती पर पहुँचने का खतरा बढ़ जाता है। हाइड्रोक्लोरो कार्बन ओजोन का नुकसान नहीं करती बल्कि धरती को गरम रखने में सहायक होती है।

आज अनेक अप्राकृतिक मानवीय गतिविधियों के कारण इन ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन बहुत बढ़ गया है जिससे वातावरण में मौजूद इसकी तह मोटी होती जा रही है और प्राकृतिक ग्रीन हाऊस प्रभाव नष्ट हो रहा है, धरती पर गर्मी बढ़ रही है तथा जलवायु परिवर्तन हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन में विश्व की भूमिका
(ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन का प्रतिशत)

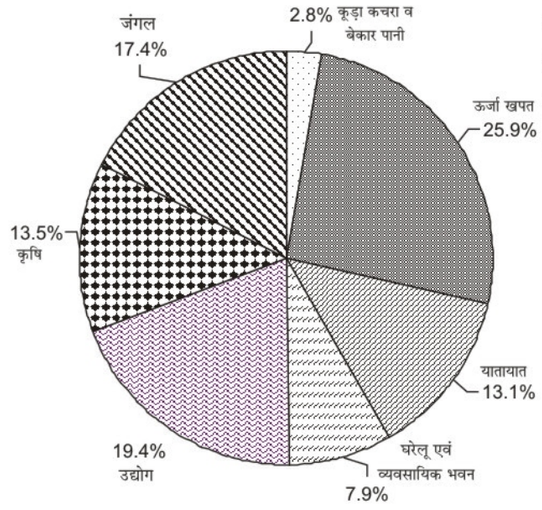

जलवायु परिवर्तन में भारत की भूमिका
(ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन का प्रतिशत)

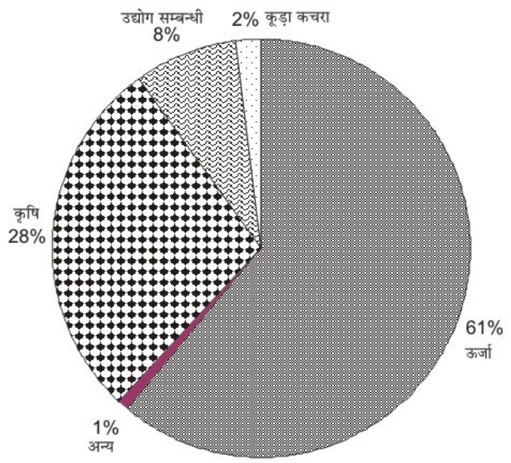

स्रोत : *आई०पी०सी० सिन्थेसिस रिपोर्ट : क्लाइमेट चेन्ज 2007*

कहाँ से हो रहा है ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन

ग्रीन हाऊस गैसों में बढ़ोत्तरी हेतु मनुष्य जिम्मेदार है लेकिन ऐसी कौन सी गतिविधियाँ है जिनके कारण आज इन गैसों का उत्सर्जन इतना बढ़ने लगा है कि जलवायु पर नकारात्मक असर दिखाई दे रहा हैं–

1. कार्बन डाई आक्साइड : नि:सन्देह यह सबसे महत्वपूर्ण गैस है जिसका उत्सर्जन पृथ्वी पर सबसे अधिक हो रहा है। इसके मुख्य स्रोत है–

- जंगलों का कटना
- कृषि अवशेषों का जलाना
- जमीन के उपयोग में बदलाव
- बढ़ता शहरीकरण
- उद्योगों से निकलता धुँआ
- फॉसिल फ्यूल के जलने से (डीजल, कोयला आदि)

> ''साइंस'' नामक पत्रिका में छपे एक शोध में वैज्ञानिकों का कहना है कि अंटार्कटिक के चारों ओर फैला दक्षिणी महासागर कार्बन डाइ आक्साइड से पूरी तरह भर गया है अब उसकी गैस सोखने की क्षमता खतरे में है। दक्षिणी महासागर दुनिया का 15 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड सोखता है जिससे तापमान सामान्य रखने में मदद मिलती है। लेकिन अब यह गैस सोखने की बजाय इसे वातावरण में वापस छोड़ रहा है। वैज्ञानिकों की चेतावनी है कि आने वाले समय में अन्य महासागरों के साथ भी ऐसा हो सकता है।

2. मीथेन : वातावरण में मौजूद दूसरी महत्वपूर्ण गैस मिथेन है। ऐसा कहा जाता है कि मिथेन के 1/4 भाग का उत्सर्जन घरेलू जानवरों जैसे गाय, बकरी, सूअर,

भैंस, ऊँट, घोड़े, व भेड़ द्वारा होता है। ये जानवर अपने चबाने की प्रक्रिया में मिथेन पैदा करते हैं। धान के खेतों में भरे पानी से भी मिथेन गैस पैदा होती है। कूड़ा करकट के एकत्रीकरण से भी मिथेन निकलती है। साथ ही, कोयले की खानों, तेल घानी, और गैस पाइप के लिकेज से भी मिथेन गैस का उत्सर्जन होता है।

3. **नाइट्रस आक्साइड :** तीसरी ग्रीन हाउस गैस नाइट्रस आक्साइड है जिसके उत्सर्जन का प्रमुख स्रोत खेतों में उपयोग की जाने वाली रसायनिक खाद है। खेतों में नाइट्रोजन की अत्यधिक मात्रा और फर्टिलाइजर के प्रयोग में अनियमितताओं की वजह से इन गैसों का उत्सर्जन बढ़ गया है।

पशुशाला के रख-रखाव व गोबर आदि के कुप्रबन्धन से भी नाइट्रस आक्साईड गैस का उत्सर्जन होता है। साथ ही मनुष्यों के मल-मूत्र विसर्जन हेतु बनाये गये सीवेज से भी इसका उत्सर्जन होता है।

4. **फ्लोरोकार्बन :** इसमें विशेषकर क्लोरोफ्लोरो कार्बन का उत्सर्जन बहुत बढ़ा है जो ओजोन परत के लिए हानिकारक गैस है। यह मुख्य रूप से एयरकन्डीशर और रेफ्रिजरेटर आदि में इस्तेमाल की जाती है।

वायुमण्डल में मौजूद ग्रीन हाऊस गैसों का प्रभाव

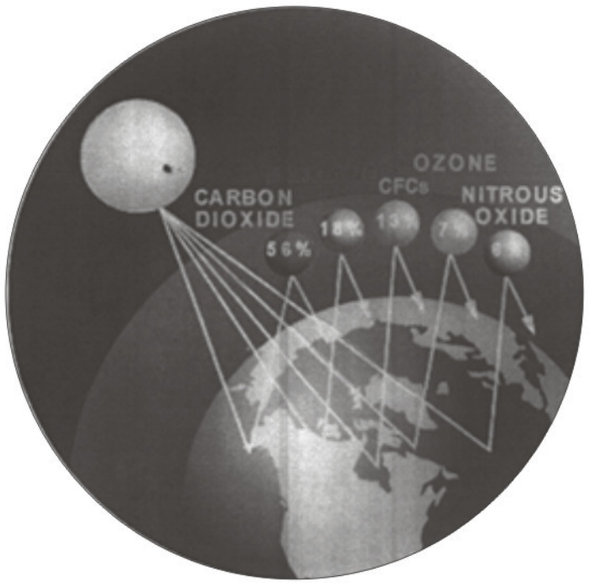

3
जलवायु परिवर्तन के कारण

पृथ्वी गतिशील है और प्राकृतिक रूप से इसकी जलवायु में कुछ न कुछ परिवर्तन आता रहता है परन्तु आज सारी दुनिया इस बात से चिन्तित है कि जलवायु में तेजी से परिवर्तन हो रहा है और वह भी मानवीय गतिविधियों के कारण। सारी दुनिया के वैज्ञानिक आज इस अध्ययन में जुड़े हुए हैं। मुख्य रूप से जलवायु परिवर्तन के दो कारण है एक तो प्राकृतिक दूसरा मानव जनित।

प्राकृतिक कारण : बहुत से प्राकृतिक कारण हैं जो जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार होते हैं-

- महाद्वीपों का अपने स्थान से खिसकना या धरती के नीचे स्थित प्लेटों का चलना। उदाहरण स्वरूप हिमालय पर्वत का प्रतिवर्ष 1 मिमी० बढ़ते जाना आदि ऐसी घटनाएं है जो पूरी तरह प्राकृतिक हैं। धरती के नीचे प्लेटो के खिसकने की क्रिया स्वत: होती रहती है। इनका प्रभाव जलवायु परिवर्तन पर पड़ता है परन्तु इनके होने की गति इतनी धीमी होती है कि प्रभाव प्रत्यक्ष में दिखते नहीं है।
- ज्वालामुखी पर्वत जब फटते हैं तो लाखों टन सल्फर डाइआक्साइड, राख, धूल और अन्य गैसें वातावरण में बिखेर देते हैं जिसका प्रभाव वातावरण की उपरी सतह पर पड़ता है, जिससे सूर्य की किरणों का पूरी मात्रा में पृथ्वी पर पड़ना अवरूद्ध हो जाता है और उस क्षेत्र की जलवायु प्रभावित होती है।
- समुद्र की लहरें भी जलवायु परिवर्तन में भूमिका अदा

भारत में आपदाओं का प्रतिशत

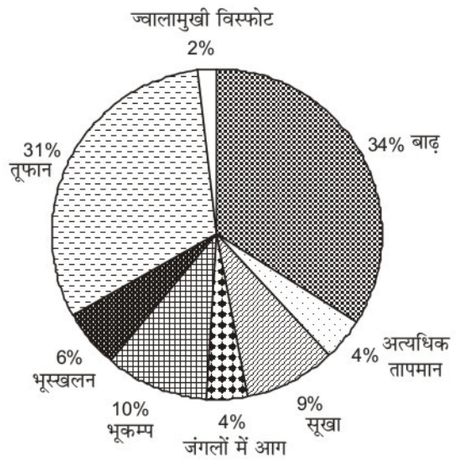

करती हैं। हमारे पृथ्वी का 71 प्रतिशत हिस्सा जल से आच्छादित है। वातावरण व जमीन की तुलना में समुद्र सूर्य की दुगुनी ऊर्जा को अवशोषित करते हैं, जिससे वाष्पीकरण बढ़ता है और गीन हाऊस गैस में बढ़ोत्तरी होती है। परन्तु यह प्रक्रिया भी अत्यन्त धीमी होती है।

इस तरह के अनेक छोटे-बड़े प्राकृतिक कारण हैं, जो जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार होते है परन्तु यह सभी सैकड़ों वर्षों में अपना प्रभाव दिखाते हैं क्योंकि इनके घटित होने की गति बहुत धीमी होती है और प्रकृति ऐसे परिवर्तनों को आत्मसात करती चलती है।

मानवीय कारण

जलवायु परिवर्तन में मानवीय कारणों को ही प्रधान माना जा रहा है क्योंकि प्राकृतिक परिवर्तन तो हमेशा से होता आया है। प्रकृति के नियमों में मानवीय हस्तक्षेप ने प्रकृति को और भी उग्र बदलाव हेतु तैयार कर दिया है। मानव जनित कारणों की सूची में कुछ प्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाले कारक है और कुछ अप्रत्यक्ष प्रभाव वाले। यहाँ प्रमुख कारकों पर चर्चा की जायेगी:

1. अन्धाधुंध औद्योगीकरण : 19वीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति में बड़े पैमाने पर फॉसिल फ्यूल का उपयोग विभिन्न गतिविधियों हेतु किया गया। इन उद्योगों ने बड़े पैमाने पर लोगों की बेरोजगारी दूर की तथा लोग गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने लगे और विकास की एक नई लहर दिखाई देने लगी। परन्तु पर्यावरण की दृष्टि से इन उद्योगों ने अपना विकास नहीं किया। प्रदूषण फैलाने में आज ये सबसे अग्रणी हैं। औद्योगिक कचरों के निस्तारण की कोई सटीक योजना न होने की वजह से उन शहरों का वातावरण प्रदूषित हो चला है जहाँ कई बड़े उद्योग संचालित हैं दूसरे अत्यधिक कोयले व बिजली की खपत भी ग्रीन हाऊस गैसों को बढ़ावा दे रही है। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने अपने आंकड़ों के आधार पर कहा है कि पिछले 40 सालों में महासागरों का जो तापमान बढ़ा है उसकी वजह औद्योगिक ईकाइयों से निकलने वाली कार्बन डाइआक्साइड गैस है।

औद्योगिकी प्रदूषण से त्रस्त छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ देश के चुनिंदा राज्यों में से एक है जहाँ बिजली आवश्यकता से अधिक बनती है, लेकिन लोग परेशान और त्रस्त हैं। यहाँ 44 फीसदी जमीन पर जंगल है, कच्चे लोहे, कोयले और चूना पत्थर का अथाह भण्डार है और कई नदियाँ हैं। पिछले 10 सालों में इन प्राकृतिक भंडारों का दोहन काफी तेजी से होने लगा है। अनेक उद्योगों ने अपने प्रदूषण से शहरों को रंग दिया है। रायपुर के किसान महेशकुमार निषाद कहते हैं कि काले धुंए के कारण खेतों में कुछ पैदा होना बंद हो रहा है। मैंने अपने सवा एकड़ खेत में पिछले दो साल से फसल नहीं ली है। ग्रामवासी बताते हैं कि तालाब के पानी पर सुबह एक काली सतह जमी हुई दिखती है, घरों की टंकी व कपड़ों पर भी ऐसी ही तह जमी दिखाई देती है।

2. अत्यधिक ऊर्जा की खपत : पृथ्वी एवं इससे जुड़े पूरे वायुमण्डल को बचाने के लिए प्रमुख चुनौती तेल, प्राकृतिक गैस एवं कोयले से निकलने वाले कार्बन डाइआक्साइड का अंत करना है। हमारी वर्तमान विकास प्रणाली इन ईधनों पर ही टिकी है। आज विश्व की कुल वाणिज्यिक ऊर्जा खपत में इनका अंशदान 80 प्रतिशत है। इनके इस्तेमाल के बजाय वैकल्पिक ऊर्जा का उपयोग करना जरूरी है। बिजली पैदा करने या बिजली प्रतिष्ठानों में ताप पैदा करने में, मोटरगाड़ी एवं उद्योगों में इस ऊर्जा का 75 प्रतिशत खपत हो जाता है।

> आस्ट्रेलिया ने अक्षय ऊर्जा कानून लागू कर परम्परागत बिजली के बल्बों पर पाबंदी लगा दी है जबकि फ्रांस अपने खपत की 80 प्रतिशत ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा के जरिये प्राप्त कर रहा है।

आने वाले समय में बिजली की मांग में अनवरत बढ़ोत्तरी होगी और इसे पैदा करने के पारम्परिक साधनों का अगर इस्तेमाल होता रहा तो प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ता जायेगा और क्षय ऊर्जा के कारण बिजली की मांग पूरी नहीं की जा सकेगी।

3. वनों व पेड़ पौधों का कम होना : जलवायु परिवर्तन व बढ़ते प्रदूषण का व्यापक असर वन क्षेत्रों में देखा जा सकता है। आज धरती पर वन क्षेत्रों में तेजी से कमी आ रही है जिसकी वजह से पर्यावरण में प्रदूषण की मात्रा बढ़ती जा रही है।

> पुराने जंगल वायुमण्डल से कार्बन डाइ आक्साइड शोषित कर जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन घटाने में मददगार होते हैं। अनुसंधानों से पता चला है कि नये जंगलों की अपेक्षा पुराने जंगल कार्बन का अधिक व लगातार संग्रह करने में समर्थ होते हैं।

भारत के वन व पर्यावरण मंत्रालय ने राष्ट्रीय पर्यावरण नीति में स्कूलों, अस्पतालों, दक्षता विकसित करने वाले प्रशिक्षण केन्द्रों, बिजली घरों, सुरक्षा केन्द्रों आदि के निर्माण में वन क्षेत्र के प्रयोग की छूट दे दी है। अन्धाधुंध वनों की कटाई से न केवल परिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ा है बल्कि वनोपज पर निर्भर रहने वाले स्थानीय समुदाय के लिए आजीविका का संकट भी पैदा हो गया है। वृक्षारोपण, प्राकृतिक वनों का विकल्प नहीं हो सकता है। इसकी वजह से बाढ़ व सूखा जैसी आपदाओं ने वहाँ भी पैर फैला लिये हैं, जहां उनके आने की आशंका भी नहीं थी।

> जलवायु परिवर्तन में बड़े बांधों की काफी अहम् भूमिका होती है। पनबिजली व सिंचाई के लिए बने बांध काफी बड़ी मात्रा में ग्रीन हाऊस गैस उत्पन्न करते हैं। बांध किसी भी ताप बिजली घर से ज्यादा प्रदूषण फैलाते हैं। इनके बनने व चलने की प्रक्रिया में अनेक वनस्पतियाँ व पेड़-पौधे सड़ते हैं जिनसे काफी मात्रा में मिथेन व कार्बन डाईआक्साइड गैसें उत्पन्न होती हैं।

कार्बन डाई आक्साइड बढ़ने का प्रतिशत

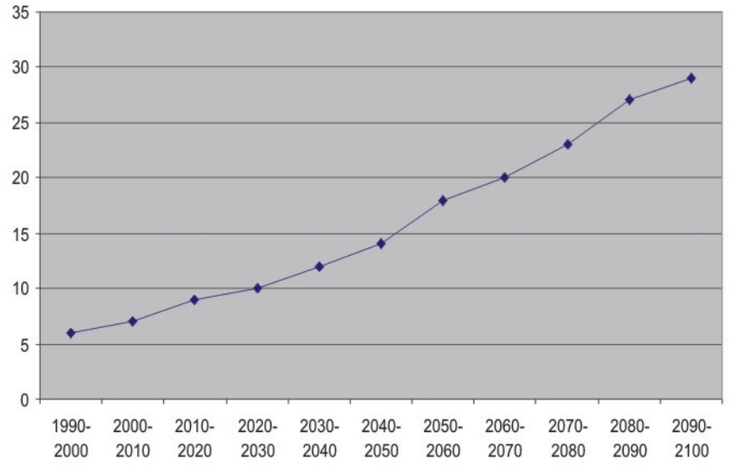

स्रोत : आई०पी०सी०सी०-रिपोर्ट 2007

4. जनसंख्या वृद्धि : जलवायु परिवर्तन में जनसंख्या वृद्धि ने भी एक अहम् भूमिका निभाई है। हमारे प्राकृतिक संसाधन एक निश्चित मात्रा व क्षेत्र में उपलब्ध हैं इनकी क्षमता व उपलब्धता के अनुकूल ही इनका उपयोग किया जा सकता है। बढ़ती जनसंख्या के कारण आज ऐसे संसाधनों का दोहन बिना सोचे समझे किया जाने लगा है। मिट्टी, पानी, हवा सबके अनियमित दोहन से प्रदूषण बढ़ने के साथ-साथ

इनकी उपलब्धता व गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। बढ़ती जनसंख्या के रहने व पेट भरने के लिए भूमि के उपयोग में निरन्तर बदलाव हो रहे हैं जो कि हानिकारक है।

5. भूमि के उपयोग में बदलाव

आज अनेक स्थानों पर जंगलों को काटकर वहाँ फसलों का उत्पादन करना, अथवा खेती योग्य जमीनों को रिहायशी इलाकों में तब्दील करने की प्रक्रिया जोरों पर चल रही है। यह प्रक्रिया जलवायु परिवर्तन में योगदान देती है। जंगलों के कटने या शहरीकरण से कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है।

भूमि के उपयोग में बदलाव लाने से वहाँ उपलब्ध संसाधनों के उपयोग में भी बदलाव करना होता है। जंगलों के पास भूमिगत जल की अच्छी उपलब्धता बनी रहती है जबकि वहीं अधिक पानी वाली नकदी फसलें लगाते जाने पर जल संसाधन का अधिक दोहन होने लगता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण

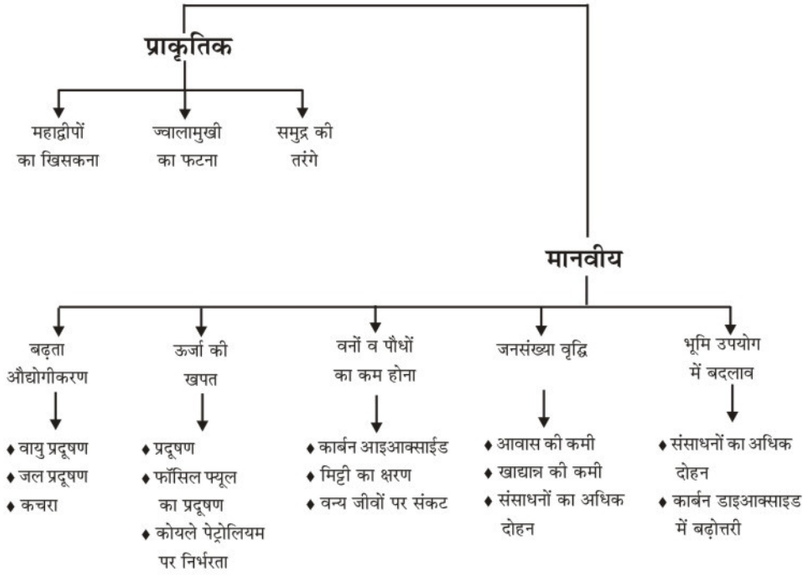

4
जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पूरे विश्व में समान रूप से नहीं दिखाई देगा ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है। कहीं ज्यादा तो कहीं कम क्षेत्र प्रभावित होंगे। भारत में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मुख्यतय: तीन पक्षों पर देखा जा सकता है–

1. समुद्र का जल स्तर बढ़ना
2. आपदाओं की संख्या में वृद्धि
3. कृषि पर प्रभाव

समुद्र का जल स्तर बढ़ना

तापमान वृद्धि के कारण समुद्र के जल स्तर में वृद्धि अपेक्षित है इसमें ग्लेशियर के पिघलने से पानी की मात्रा बढ़ेगी। यह अनुमान लगाया जा रहा है कि इस सदी के अंत तक समुद्र का जल स्तर .1 से .5 मीटर (4–20 इंच) तक बढ़ सकता है। इस वृद्धि से तटीय क्षेत्रों के समुद्र में विलय का तथा वहां स्थित कृषि क्षेत्रों का भारी मात्रा में नुकसान संभावित है। भारत में समुद्रों का स्तर 15–38 सेमी० बढ़ने के कारण हजारों लोगों को विस्थापित होना पड़ेगा। इन क्षेत्रों के भूमिगत पानी में लवणता बढ़ेगी जिससे मनुष्यों व पेड़ पौधों, फसलों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। पीने के पानी की दिक्कत भी सामने आने लगेगी। भारत के दक्षिणी क्षेत्रों के लिए यह स्थिति खतरनाक हो सकती है।

समुद्र के जल स्तर में वृद्धि

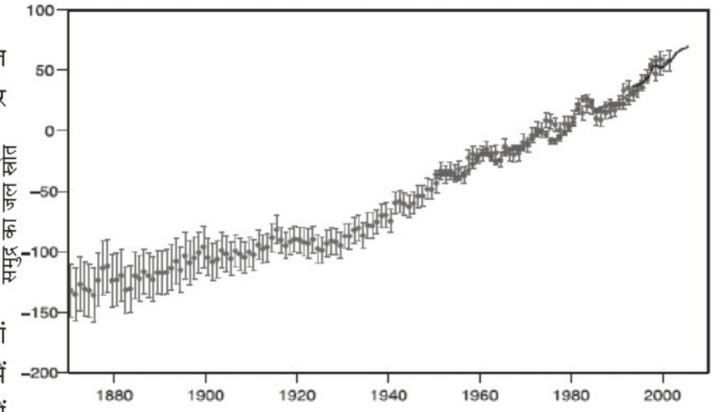

आपदाओं की संख्या में वृद्धि

जलवायु परिवर्तन से प्रभावित व बढ़ती आपदाओं में देश का अधिकांश हिस्सा शामिल है। प्रमुख रूप से यहाँ दो प्रकार की आपदाएं आती है बाढ़ व सूखा, जिनका प्रभाव देश के विभिन्न क्षेत्रों को झेलना पड़ता है।

भारत के लिए जलवायु परिवर्तन का मतलब.....

- *35 सालों में 40 प्रतिशत हिमालय ग्लेशियर पिघल कर समाप्त हो जायेगा।*
- *गंगा के तटीय मैदान की उर्वरता समाप्त हो जायेगी।*
- *25 प्रतिशत जंगली जानवर समाप्त हो जायेगें।*
- *समुद्र का जल स्तर बढ़ने से 7500 किमी० तटीय क्षेत्र व 50 करोड़ लोगों का जीवन खतरे में होगा।*
- *तटीय शहर व द्वीप जलमग्न हो जायेंगे।*
- *कृषि की उत्पादकता घटेगी, भूख व खाद्य असुरक्षा बढ़ेगी।*
- *जल का स्तर घटेगा, पानी की कमी होगी।*
- *मलेरिया, डेंगू, हैजा व अन्य बीमारियाँ फैलेंगी।*
- *परिस्थितिजन्य शरणार्थियों की संख्या करोड़ों में होगी।*

जलवायु परिवर्तन व बाढ़

हमारे देश में बहुसंख्यक लोग कृषि से अपना जीवन यापन करते हैं। मूलत: कृषि आधारित व छोटी जोत वाले क्षेत्र में बाढ़ एक प्राकृतिक प्रक्रिया रही है। विगत कुछ दशकों में यहाँ जलवायु परितर्वन का असर बाढ़ पर स्पष्ट देखा जा सका है। बाढ़ के क्रम, स्वरूप व प्रभाव में क्रमश: परिवर्तन होता दिख रहा है। प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार रहे–

- वर्षा के क्रम में परिवर्तन आये हैं। वर्षा के समय, कुल वर्षा, वर्षा की क्रमबद्धता में बदलाव स्पष्ट दिखता है।
- बाढ़ त्वरित रूप में तेज गति से आने लगी है। बंधों के टूटने व अन्य कारणों से आकस्मिक बाढ़ भी आती रहती है।
- छोटी नदियाँ भी बाढ़ को विकराल करने में सहयोगी बन रही है।
- बड़ी झील, ताल, पोखरे आदि की निरन्तर कम होती संख्या की वजह से पानी को ठहरने की जगह नहीं मिलती।
- जल जमाव अधिक व लम्बे समय तक रह रहा है।

ऐसे परिवर्तनों का कृषि, स्वास्थ्य व जीवन यापन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जलवायु परिवर्तन ने बाढ़ को आपदा का रूप दे दिया है। कुछ क्षेत्रों में बाढ़ प्रत्येक वर्ष ही आती है परन्तु सामान्यत: 3–4 सालों में बाढ़ की आवृत्ति व प्रवृत्ति में तेजी आ गई है जिससे जान–माल का बहुत नुकसान होने लगा है।

वर्ष	वर्षा क्रम का विचलन (%)
2000	– 11
2001	– 15
2002	– 19
2003	+ 2
2004	–13
2005	– 1
2006	0.7
2007	1.0

जलवायु परिवर्तन व सूखा

सूखे की स्थितियाँ जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा दे रही है तो जलवायु परिवर्तन सूखे की स्थितियों को और विकट बना रहा है। सूखे क्षेत्र के विस्तार के कुछ कारण निम्न हैं–

मृदा क्षरण : एक इंच मिट्टी की परत को बनने में सैकड़ों साल लगते हैं परन्तु इसके दुरूपयोग से यह कुछ ही सालों में बंजर हो जाती है। वर्तमान समय में अत्यधिक रसायनों के प्रयोग और एक ही तरह की फसलों के उत्पादन से मिट्टी की शक्ति या ताकत समाप्त होने लगी है। दूसरे, पेड़ों के कटने व मेड़बन्दी न करने से मिट्टी का क्षरण बड़ी मात्रा में हो रहा है।

जल संकट : सूखे क्षेत्रों में सबसे बड़ी समस्या जल की होती है। यह एक दुर्लभ संसाधन माना जाता है। कम वर्षा होने के कारण जमीन की सतह में पानी का एकत्रीकरण नहीं हो पाता जिससे कुएं, तालाब, पोखरे आदि प्राकृतिक जल स्त्रोत सूखने लगते हैं। दूसरे अधिक पानी वाली फसलों तथा एक ही प्रकार की फसलों के लगाने से जमीन के नीचे का जल स्तर घटता जाता है जिससे सिंचाई के लिए तो दूर पीने के पानी की भी दिक्कत होने लगती है। इस प्रकार सूखे में भी पनपने वाले पेड़ पौधे नष्ट होने लगते हैं।

> वर्ष 2002 के सूखा प्रभावित 10 में से 9 राज्यों में 50 प्रतिशत कुंए भूजल स्तर में कमी के कारण सूख गये।

जैवविधिता की हानि : सूखे, लवणता आदि से जमीन की उर्वरता समाप्त होने का असर पेड़ पौधों के स्वास्थ्य अथवा पुन: उगने की क्षमता पर पड़ता है। इनके नष्ट होने से उस क्षेत्र में रहने वाले मनुष्यों व जानवरों पर भारी संकट आ जाता है क्योंकि यह उनके लिए महत्वपूर्ण संसाधन हैं। इससे वहाँ रहने वालों की गरीबी व खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है।

ऊर्जा उत्पन्न करने का वर्तमान तरीका

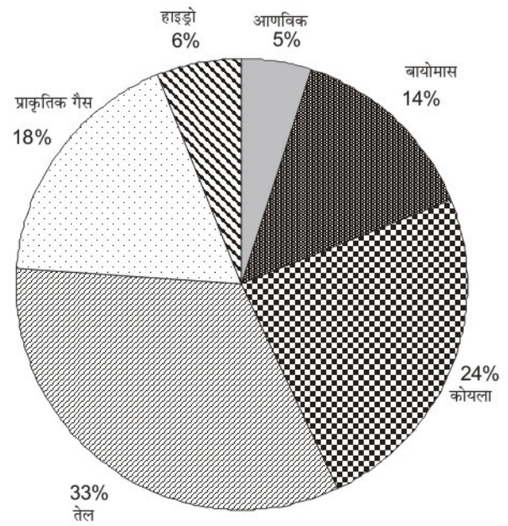

वर्षा की कमी से फसल क्षेत्र में गिरावट

वर्षा का माप	वर्गीकरण	प्रतिशत (%)
750 मी०मी० से कम	कम वर्षा	33
750 से 1125 मी०मी०	सामान्य वर्षा	35
1125 से 2000 मी०मी०	अधिक वर्षा	24
2000 मी०मी० से अधिक	अत्यधिक वर्षा	8

स्रोत : कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

वैश्विक बढ़ते तापमान का औसत

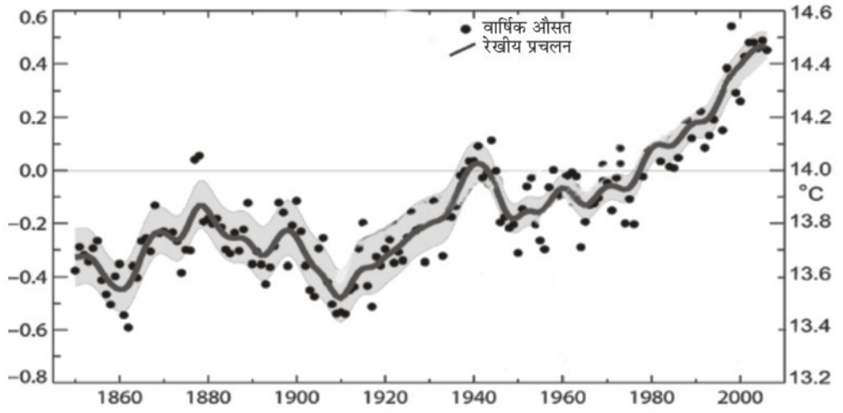

विश्व में विभिन्न आपदाओं से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत

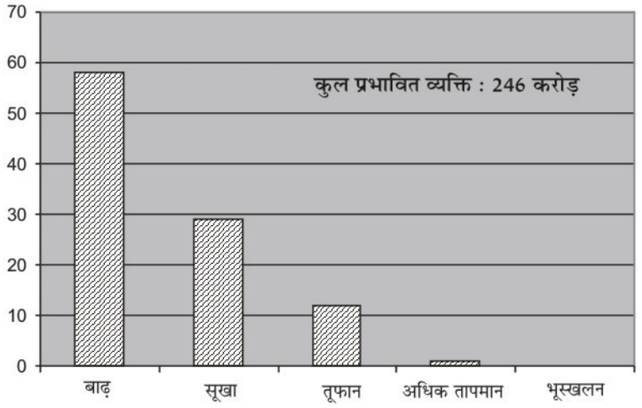

विश्व में विभिन्न आपदाओं से होने वाले नुकसान का प्रतिशत

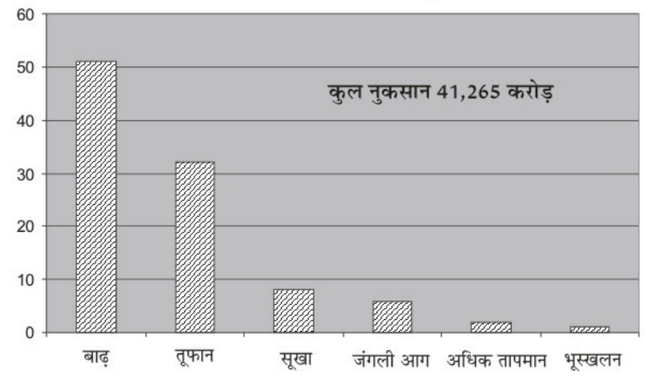

गर्भवती महिलाओं पर भी जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्रों का जलस्तर बढ़ने से भारत के तटीय इलाकों में रहने वाली गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य पर सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। आई०पी०सी०सी० के मैक माईकल ने कहा कि "जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्रों का जलस्तर बढ़ रहा है। आने वाले कुछ समय में भारत में इसके बेहद बुरे प्रभाव देखने को मिलेंगे।" उन्होंने कहा कि यहाँ शुद्ध पेयजल की कमी के कारण लोगों को खारे पानी पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। मैक माईकल ने बताया कि शरीर में नमक की मात्रा बढ़ने से महिलाओं में हृदय रोगों और गर्भावस्था के आखिरी तीन माह में उच्च रक्तचाप से पीड़ित होने का खतरा पैदा हो सकता है। उन्होंने बताया कि इस कारण नवजात शिशु के स्वास्थ्य पर भी विपरीत असर पड़ेगा।

5
जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

हमारे देश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल करीब 32.44 करोड़ हेक्टेयर है। इसमें से 14.26 करोड़ हेक्टेयर में खेती की जाती है। अर्थात् देश के सम्पूर्ण क्षेत्र के 47 प्रतिशत हिस्से में खेती होती है। आज भी हमारी 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है और इस जनसंख्या का 80 प्रतिशत से अधिक हिस्सा सीधा-सीधा खेती किसानी से जुड़ा है। 1991 की जनगणना के अनुसार 65 प्रतिशत लोग रोजगार के लिए खेती पर निर्भर हैं।

- **भारत की 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है।**
- **जी०डी०पी० में कृषि का योगदान 18 प्रतिशत है।**
- **कृषि क्षेत्र से 344 करोड़ टन प्रतिवर्ष ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन होता है।**

ऐसी स्थिति में कृषि एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन या गिरावट देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या को प्रभावित कर सकता है। जलवायु परिवर्तन एक ऐसा ही कारक है जिससे प्रभावित होकर कृषि अपना स्वरूप बदल सकती है और इस पर निर्भर लोगों की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

आखिर कृषि पर ही क्यों ?

कृषि की उत्पादकता पूरी तरह से मौसम, जलवायु और पानी की उपलब्धता पर निर्भर होती है, इनमें से किसी भी कारक के बदलने अथवा स्वरूप में परिवर्तन से कृषि उत्पादन प्रभावित होता है। कृषि का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है, जल-जंगल-जमीन ही प्रकृति का आधार है और यही कृषि का भी।

आपदाओं से कृषि पहले भी खतरे में पड़ती रही है। बाढ-सूखा-भूस्खलन जैसी घटनाओं ने कई बार किसानों को भुखमरी के कगार पर खड़ा किया है, लेकिन ये आपदायें अनेक वर्षों में एक बार आती थीं इसलिए किसान संभल जाता था। आज ऐसी आपदाएं प्रतिवर्ष आ रही है और अपने भीषणत्तम स्वरूप में आ रही हैं ऐसें में किसानों को इनसे निपटने के लिए उपाय ढूँढ़ना मुश्किल होता जा रहा है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव एक महत्वपूर्ण विषय इसलिए हो जाता है क्योंकि :

- भारत एक विशाल देश है जहाँ जलवायु में बहुत विविधता देखी जा सकती है।

- मानसून पर बहुत ज्यादा निर्भरता है।
- जलवायु और जल संसाधन के बीच सीधा जुड़ाव है।
- दो तिहाई क्षेत्र वर्षा आधारित कृषि पर निर्भर है।
- 70 प्रतिशत ऐसे लोग कृषि पर निर्भर हैं जिनके पास 1 से 5 हेक्टेयर खेती है।

लघु सीमान्त किसानों की समस्याएं

- वर्षा आधारित कृषि ही जीवनयापन का आधार है।
- आर्थिक और सामाजिक विकास बहुत कम है।
- आपदा प्रबन्धन के कौशल सीमित हैं।
- अनुकूलन की संभावनाएं छोटी जोत की वजह से कम है।
- जानकारी व शिक्षा की कमी है।
- पारम्परिक संसाधन उपलब्ध नहीं है।
- कृषियेत्तर गतिविधियों हेतु आर्थिक सम्पन्नता नहीं है।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर संभावित प्रभाव

- सन् 2100 तक फसलों की उत्पादकता में 10-40 प्रतिशत की गिरावट/कमी आयेगी।
- रबी की फसलों को ज्यादा नुकसान होगा। प्रत्येक 1 से०ग्रे० तापमान बढ़ने पर 4-5 करोड़ टन अनाज उत्पादन में कमी आयेगी।
- पाले के कारण होने वाले नुकसान में कमी आयेगी जिससे आलू, मटर और सरसों का कम नुकसान होगा।
- सूखा और बाढ़ में बढ़ोत्तरी होने की वजह से फसलों के उत्पादन में अनिश्चितता की स्थिति होगी।
- फसलों के बोये जाने का क्षेत्र भी बदलेगा, कुछ नये स्थानों पर उत्पादन किया जायेगा।
- खाद्य व्यापार में पूरे विश्व में असंतुलन बना रहेगा।
- पशुओं के लिए पानी, पशुशाला और ऊर्जा सम्बन्धी जरूरतें बढ़ेंगी विशेषकर दुग्ध उत्पादन हेतु।
- समुद्रों व नदियों के पानी का तापमान बढ़ने के कारण मछलियों व जलीय जन्तुओं के प्रजनन क्षमता व उपलब्धता में कमी आयेगी।
- सूक्ष्म जीवाणुओं और कीटों पर प्रभाव पड़ेगा। कीटों की संख्या में वृद्धि होगी तो सूक्ष्म जीवाणु नष्ट होगें।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों की फसलों में अधिक नुकसान होगा क्योंकि सिंचाई हेतु पानी की उपलब्धता भी कम होती जायेगी।

कृषि व खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाले कारण

- जनसंख्या वृद्धि
- शहरीकरण बढ़ना
- खेती योग्य जमीनों का कम होना
- निरन्तर फसलों का नुकसान
- फसल उत्पादन में कमी

जलवायु परिवर्तन से फसलों की पैदावार के अंतराल कम हुए हैं, जिससे कि खाद्य उत्पादन की विकास प्रक्रिया में ठहराव समय से पहले ही आ रहा है। उत्तर पश्चिम भारत में पाले से होने वाले फसलों के नुकसान में कमी का अनुमान किया जा रहा है। हिमालय के हिमनद पिघलने में बढ़ोत्तरी, सिंचाई के लिए जल उपलब्धता को प्रभावित करेगी, खास कर गंगा के मैदानी क्षेत्रों में इसका असर पड़ सकता है, जिससे खाद्य उत्पादन प्रभावित होगा। आई०पी०सी०सी० ने चेतावनी देकर कहा है कि भविष्य में बढ़ता हुआ तापमान उर्वरक की कार्य क्षमता को कम करेगा, जिससे भविष्य में खाद्य आपूर्ति के लिए अधिक उर्वरक की आवश्यकता होगी और बढ़ती जनसंख्या एवं आमदनी के चलते भोजन की मांग भी अधिक होगी।

जैविक खेती ही है उपाय

रसायनिक खेती जलवायु परिवर्तन का बड़ा कारक है, जबकि जैविक खेती से जलवायु तो बेहतर होती ही है इससे जमीन की उपजाऊ क्षमता भी बढ़ती है। डा० वन्दना शिवा ने नवधान्य की ओर से हुए शोध के हवाले से बताया कि रसायनिक खेती की तुलना में जैविक खेती से कार्बन पृथक्करण में 25 फीसदी बढ़ोत्तरी होती है। मिट्टी में पानी रोकने की क्षमता भी 17 फीसदी बढ़ जाती है। जैविक खेती को लेकर भ्रांति फैलाई जाती है कि इसमें उपज कम और रसायनिक खाद के प्रयोग से अधिक उत्पादन होता है। जबकि शोध में पाया गया कि रसायनिक बीटी कपास की खेती करने वालों की तुलना में जैविक खेती करने वाले किसानों की दस गुना अधिक आमदनी हुई।

फसलों पर प्रभाव

कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जो संभावित प्रभाव दिखने वाले हैं वह मुख्य रूप से दो प्रकार के दिखाई दे सकते हैं एक तो क्षेत्र आधारित, दूसरे फसल आधारित। अर्थात् विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों पर अथवा एक ही क्षेत्र की प्रत्येक फसल पर अलग-अलग प्रभाव पड़ सकता है।

वर्ष	मौसम	तापमान वृद्धि (से०ग्रे०)		वर्षा में परिवर्तन (%)	
		न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम
2020	रबी	1.08	1.54	-1.95	4.36
	खरीफ	0.87	1.12	1.81	5.10
2050	रबी	2.54	3.18	-9.22	3.82
	खरीफ	1.81	2.37	7.18	10.52
2080	रबी	4.14	6.31	-24.83	-4.50
	खरीफ	2.91	4.62	10.10	15.18

गेहूँ और धान हमारे देश की प्रमुख खाद्य फसलें है। इन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव यहाँ विस्तार में बताया जा रहा है-

गेहूँ का उत्पादन :

- अध्ययनों में पाया गया है कि यदि तापमान 2° C के करीब बढ़ता है तो अधिकांश स्थानों पर गेहूँ की उत्पादकता में कमी आयेगी। जहाँ उत्पादकता ज्यादा है (उत्तरी भारत में) वहाँ कम प्रभाव दिखेगा, जहाँ कम उत्पादकता है वहाँ ज्यादा प्रभाव दिखेगा।

भारत में जलवायु परिवर्तन का गेहूँ उत्पादन पर प्रभाव

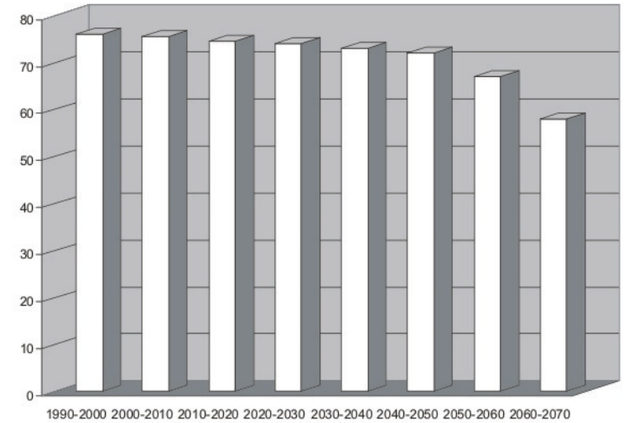

- प्रत्येक 1 सेंटीग्रेट तापमान बढ़ने पर गेहूँ का उत्पादन 4-5 करोड़ टन कम होता जायेगा। अगर किसान इसके बुआई का समय सही कर ले तो उत्पादन की गिरावट 1-2 टन कम हो सकती है।

***धान का उत्पादन*:**

- हमारे देश में कुल फसल उत्पादन में 42.5 प्रतिशत हिस्सा धान की खेती का है।
- तापमान वृद्धि के साथ-साथ धान के उत्पादन में गिरावट आने लगेगी।
- अनुमान है कि 2° C तापमान वृद्धि से धान का उत्पादन .75 टन प्रति हेक्टेयर कम हो जायेगा।

- देश का पूर्वी हिस्सा धान उत्पादन में ज्यादा प्रभावित होगा। अनाज की मात्रा में कमी आ जायेगी।
- धान वर्षा आधारित फसल है इसलिए जलवायु परिवर्तन के साथ बाढ़ और सूखे की स्थितियाँ बढ़ने पर इस फसल का उत्पादन गेहूँ की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित होगा।

जलवायु परिवर्तन से केवल फसलों का उत्पादन ही नहीं प्रभावित होगा वरन् उनकी गुणवत्ता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अनाज में पोषक तत्वों और प्रोटीन की कमी पाई जायेगी जिसके कारण संतुलित भोजन लेने पर भी मनुष्यों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा और ऐसी कमी की अन्य कृत्रिम विकल्पों से भरपाई करनी पड़ेगी। गंगा तटीय क्षेत्रों में तापमान वृद्धि के कारण अधिकांश फसलों का उत्पादन घटेगा।

जलवायु परिवर्तन का पशुओं पर प्रभाव

फसलों और पेड़-पौधों के साथ जानवरों पर भी जलवायु परिवर्तन का असर दिखेगा। संभावित प्रभाव इस प्रकार हो सकते हैं-

- तापमान में बढ़ोत्तरी का असर जानवरों के दुग्ध उत्पादन व प्रजनन क्षमता पर सीधा पड़ेगा।
- अनुमान लगाया जाता है कि तापमान वृद्धि से दुग्ध उत्पादन में सन् 2020 तक 1.6 करोड़ टन तथा 2050 तक 15 करोड़ टन 2050 तक गिरावट आ सकती है।
- सबसे अधिक गिरावट संकर नस्ल की गायों में (.63 प्रतिशत) भैसों में (.50 प्रतिशत) और देशी नस्लों में (.40 प्रतिशत) होगी।

संकर नस्ल की प्रजातियाँ गर्मी के प्रति कम सहनशील होती हैं इसलिए उनकी प्रजनन क्षमता से लेकर दुग्ध क्षमता ज्यादा प्रभावित होगी। जबकि देशी नस्ल के पशुओं में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कुछ कम दिखेगा।

जलवायु परिवर्तन का जल संसाधन पर प्रभाव

पृथ्वी पर इस समय 140 करोड़ घन मीटर जल है। इसका 97 प्रतिशत भाग खारा पानी है जो समुद्रो में स्थित है। मनुष्यों के हिस्से में कुल 136 हजार घन मीटर जल ही बचता है। पानी तीन रूपों में पाया जाता है- तरल- जो कि समुद्रों, नदियों, तालाबों और भूमिगत जल में पाया जाता है। ठोस- जो कि बर्फ के रूप मे (ग्लेशियर आदि) पाया जाता है। गैस- वाष्पीकरण द्वारा जो पानी वातावरण में गैस के रूप में मौजूद होता है।

पूरे विश्व में पानी की खपत प्रत्येक 20 साल में दुगुनी हो जाती है जबकि धरती पर उपलब्ध पानी की मात्रा सीमित है। शहरी क्षेत्रों में, कृषि क्षेत्रों में और उद्योगों में बहुत ज्यादा पानी बेकार होता है। यह अनुमान लगाया जाता है यदि इसको सही ढंग से व्यवस्थित किया जाये तो 40 से 50 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है।

पानी के सन्दर्भ में कुछ तथ्य :

- धरती का 75 प्रतिशत भाग जल से घिरा हुआ है।
- धरती का 97 प्रतिशत जल समुद्रों में स्थित है।
- पीने योग्य 2 प्रतिशत पानी बर्फ के रूप में जमा है।
- पीने के लिए केवल 1 प्रतिशत पानी उपलब्ध है।
- दुनिया में औसत वर्षा 850 मी०मी० होती है।
- एक व्यस्क व्यक्ति का 60 प्रतिशत से 70 प्रतिशत शरीर, 82 प्रतिशत खून, 70 प्रतिशत दिमाग और 90 प्रतिशत फेफड़े पानी से बने हैं।
- एक टपकता हुआ नल पूरे दिन में 6 लीटर पानी बेकार करता है।
- धरती के आधे से अधिक जीव जन्तु पानी के अंदर रहते हैं।
- पृथ्वी का 10 प्रतिशत हिस्सा बर्फ से ढंका हुआ है।

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषकों के लिए जल-आपूर्ति की भयंकर समस्या हो जायेगी तथा बाढ़ एवं सूखे की बारम्बारता में वृद्धि होगी। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में लम्बे शुष्क मौसम तथा फसल उत्पादन की असफलता बढ़ती जायेगी। यहीं नहीं, बड़ी नदियों के मुहानों पर भी कम जल बहाव, लवणता, बाढ़ में वृद्धि तथा शहरी व औद्योगिक प्रदूषण की वजह से सिंचाई हेतु जल उपलब्धता पर भी खतरा महसूस किया जा सकता है।

भारत में विश्व की कुल जनसंख्या का 16 प्रतिशत निवास करता है परन्तु इसके पास कुल 4 प्रतिशत जल संसाधन उपलब्ध हैं।

हमारे जीवन में भूमिगत जल की महत्ता सबसे अधिक है। पीने के साथ-साथ कृषि व उद्योगों के लिए भी इसी जल का उपयोग किया जाता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ ही पानी की मांग में बढ़ोत्तरी होने लगी है जो स्वाभाविक है परन्तु बढ़ते जल प्रदूषण और उचित जल प्रबन्धन न होने के कारण पानी आज एक समस्या बनने लगी है। सारी दुनिया में पीने योग्य पानी का अभाव होने लगा है।

> भारत में प्रति व्यकि जल का उपयोग मात्र 610 घन मीटर प्रतिवर्ष है जबकि आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टीना, अमेरिका व कनाडा में यह 1000 घन मीटर प्रतिव्यकि प्रतिवर्ष से भी अधिक है।

गाँवों में जल के पारम्परिक स्रोत लगभग समाप्त होते जा रहे हैं। गाँव के तालाब, पोखरे, कुंओं का जल स्तर बनाये रखने में मददगार होते थे। किसान अपने खेतों में अधिक से अधिक वर्षा जल का संचय करता था ताकि जमीन की आर्द्रता व उपजाऊपन बना रहे। परन्तु अब बिजली से ट्यूबवेल चलाकर और कम दामों में बिजली की उपलब्धता से किसानों ने अपने खेतों में जल का संरक्षण करना छोड़ दिया।

एक दृश्य :

- ग्लेशियर के पिघलने से बाढ़ की आवृत्ति बढ़ेगी।
- समुद्र का जल स्तर बढ़ने से भूमिगत जल क्षारीय होने लगेगा।
- औसत से अधिक वर्षा होगी और सूखा क्षेत्र बढ़ता जायेगा।
- गंगा बेसिन में बारिश कम समय होगी जबकि अन्य हिस्से में वर्षा के समय में बढ़ोत्तरी होगी।
- पीने के योग्य पानी की उपलब्धता क्रमशः कम होती जायेगी।
- जल प्रदूषण के कारण अनेक जलीय जीव-जन्तु समाप्त होने लगेंगे।

जलवायु परिवर्तन का मिट्टी पर प्रभाव

कृषि के अन्य घटकों की तरह मिट्टी भी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही है। रसायनिक खादों के प्रयोग से मिट्टी पहले ही जैविक कार्बन रहित हो रही थी अब तापमान बढ़ने से मिट्टी की नमी, और कार्यक्षमता प्रभावित होगी। मिट्टी में लवणता बढ़ेगी और जैव विविधता घटती जायेगी। भूमिगत जल के स्तर का गिरते जाना भी इसकी उर्वरता को प्रभावित करेगा।

पौधे को क्या चाहिए?

पौधे अपना भोजन दो प्रकार से प्राप्त करते हैं- एक तो वातावरण, से दूसरा मिट्टी से। वातावरण के द्वारा पौधे-कार्बन 44 प्रतिशत, आक्सीजन 44 प्रतिशत, हाइड्रोजन 6 प्रतिशत और नाइट्रोजन 2-3 प्रतिशत प्राप्त कर लेते है अर्थात् बड़ी मात्रा में 95-97 प्रतिशत पोषक तत्व वातावरण द्वारा प्राप्त हो जाते हैं। बाकी बचा हुआ 4 से 5 प्रतिशत भोजन मिट्टी से प्राप्त होता है। इसमें थोड़ी मात्रा में खनिज पदार्थों की आवश्यकता होती है। परन्तु आज की खेती में पौधों को जो भोजन दिया जा रहा है वह उनकी आवश्यकता के बिलकुल विपरीत है। इसलिए मिट्टी की ताकत समाप्त होती जा रही है।

बाढ़ जैसी आपदाओं के कारण मिट्टी का क्षरण अधिक होगा वहीं सूखे की वजह से इसमें बंजरता बढ़ती जायेगी। पेड़ पौधों के कम होते जाने तथा विविधता न अपनाए जाने के कारण ऊपजाऊ मिट्टी का क्षरण खेतों को बंजर बनाने में सहयोगी होगा।

रोग व कीट पर प्रभाव

इस बात के ठोस प्रमाण हैं कि जलवायु परिवर्तन से कीट व रोगों के बढ़त पर जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। तापमान, नमी तथा वातावरण की गैसों से पौधों, फफूँद तथा अन्य रोगाणुओं के प्रजनन में वृद्धि तथा कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं के अंर्न्तसम्बन्धों में बदलाव आदि दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे।

गर्म जलवायु, कीट पंतगों की प्रजनन क्षमता में वृद्धि हेतु सहायक होता है। लम्बे समय तक चलने वाले बसन्त, गर्मी व पतझड़ के मौसम में अनेक कीटों की प्रजनन संख्या अपना जीवन चक्र पूरा करती है। जाड़ों में कहीं छुप कर ये लार्वा को बचाये रखते हैं। हवा के रूख में बदलाव से हवा जनित कीटों में वृद्धि के साथ-साथ वैक्टीरिया और फंगस में भी वृद्धि होती है। इनको नियंत्रित करने के लिए अधिक से अधिक मात्रा में कीटनाशक प्रयोग किये जायेंगे जो अन्य बीमारियों को बढ़ावा देंगे। जानवरों में बीमारियां भी समान रूप से बढ़ेगी।

इस प्रकार जलवायु परिवर्तन से विभिन्न खाद्य फसलों, पशुओं, मछली पालन और चारागाह के लिए भूमि की उपयुक्तता काफी हद तक प्रभावित होगी। इतना ही नहीं इसका प्रभाव स्वास्थ्य, वन उत्पादकता, कीटों व रोगों के प्रकोप, जैव विविधता तथा पारिस्थितिकी पर भी पड़ेगा।

विलुप्त होंगी बारह हजार प्रजातियाँ

संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के मुताबिक अगले तीस सालों में दुनिया के एक चौथाई स्तनपायी जीव विलुप्त हो सकते हैं। जंगलों के तेजी से नष्ट होने और उसके कारण जानवरों की प्रजातियों को दूसरे स्थानों पर ले जाकर छोड़े जाने के कारण जैव संतुलन बिगड़ने लगा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण विभाग ने जानवरों व वनस्पतियों की बारह हजार से ज्यादा प्रजातियों की सूची दी है जिनके विलुप्त होने का खतरा है। इनमें एक हजार स्तनपायी जीव शामिल हैं।
पक्षियों की भी हर आठ में से एक प्रजाति पर और करीब 5 हजार पौधों पर यही खतरा मंडरा रहा है। इसकी मुख्य वजह जानवरों व वनस्पतियों के रहने की जगहें, जंगलों और दलदलों का मनुष्यों के रहने व औद्योगीकरण हेतु इस्तेमाल करना हैं।

कृषि उत्पादन व विपणन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

विषय वस्तु	प्रभाव के प्रकार			
	तापमान	वर्षा	कार्बन डाई आक्साईड	बड़ी घटनाएं
क. फसल व चारा				
• पौधे का आकार/उत्पादन	*	*	*	*
• पानी की आवश्यकता	*		*	
ख. मिट्टी				
• मिट्टी में नमी	*	*		
• मिट्टी की उर्वरता	*	*		
ग. पशु				
• आहार	*		*	*
• दुग्ध उत्पादन	*			*
• प्रजनन क्षमता	*			*
• कार्य क्षमता	*	*	*	*
घ. सिंचाई				
• उपलब्ध मात्रा	*	*		*
• अनुपलब्धता	*			
ड. कीट/रोग				
• बीमारियाँ/कीट	*	*		
• खरपतवार	*	*	*	
• नेवीगेशन		*	*	*

स्रोत : - सिन्हा व स्वामीनाथन (1991)
- राव व सिन्हा (1994)
- ससीन्द्रन व अन्य (2000)
- अग्रवाल व अन्य (2002)

6
जलवायु परिवर्तन में कृषि की भूमिका

जलवायु परिवर्तन से कृषि केवल प्रभावित ही नहीं हो रही है वरन् वह जलवायु परिवर्तन में योगदान भी दे रही है। वह अगर पीड़ित है तो कहीं कारण भी है। मौसम के बदलाव हेतु जिम्मेदार ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कृषि भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यह माना जाता है कि कृषि से मिथेन व नाइट्रस आक्साइड गैस का सबसे ज्यादा उत्सर्जन होता है।

भारत में ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन

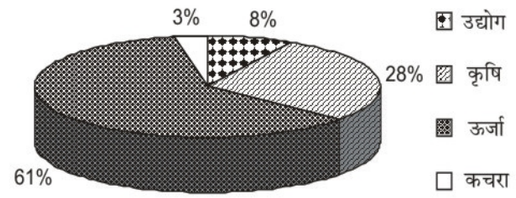

कुल ग्रीन हाऊस गैसों में 13 प्रतिशत का योगदान कृषि द्वारा होता है जिसमें प्रतिवर्ष		
मिथेन	:	3.3 जी०टी०
नाइट्रस ऑक्साइड	:	2.8जी०टी०
कार्बन डाइआक्साईड	:	0.04

स्रोत : आई०पी०सी०सी०-रिपोर्ट 2007

कृषि क्षेत्र में की जाने वाली अनेक गतिविधियाँ ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन हेतु जिम्मेदार हैं इसमें सबसे बड़ा योगदान रसायनिक फर्टिलाइजर और विदेशी नस्ल के पशुओं का है जो इनका सबसे अधिक उत्सर्जन करते हैं इसके बाद फसल अवशेष व कूड़ा कचरा जलाने से भारी मात्रा में उत्सर्जन होता है।

ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में सबसे अहम् भूमिका रसायनिक खादों की है जो प्रति वर्ष 2.1 जी०टी० कार्बन डाई आक्साइड के बराबर नुकसान पहुँचाते हैं। दूसरा जो सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है वह है पशुओं का और तीसरा स्रोत है ऊर्जा जलाने का जो तकरीबन कुल कृषि का 19 प्रतिशत है। 5 प्रतिशत स्रोत जंगलों के काटने से उत्पन्न हुए हैं। कृषि के द्वारा उत्सर्जित गैसों का विवरण व उनके स्रोत इस प्रकार है-

कार्य	गैस %	स्रोत
कृषि	11%	मिथेन व नाइट्रस आक्साइड विशेष रूप से
कृषि भूमि में बदलाव	9%	जंगलों का कटना
उद्योग	3%	खाद उत्पादन, भोज्य पदार्थ, उद्योग
वाहन (आवागमन)	4%	वितरण व ढुलाई
ऊर्जा	3%	खेतों पर, मशीनों से
प्रसंस्करण व पैकेजिंग	2%	
भवन व इन्फ्रास्ट्रक्चर	2%	भण्डारण, वितरण
कचरा व अवशेष	1%	भोजन व पैंकेजिंग से
कुल	**35%**	

भारतीय कृषि का जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव

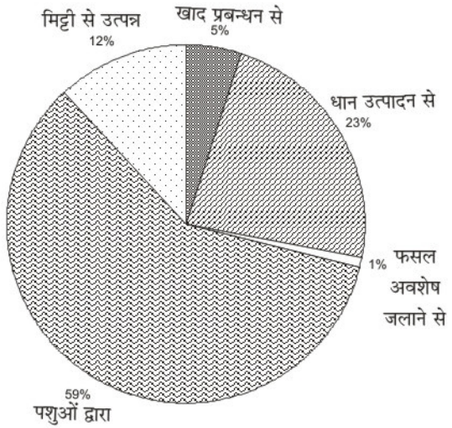

मिथेन गैस का उत्सर्जन

ग्रीन हाऊस गैसों में मिथेन 14 प्रतिशत मौजूद होती है। इसका दो तिहाई हिस्सा मानवजनित है और मुख्यतया कृषि पर आधारित है। मिथेन का कृषि क्षेत्र में कहाँ-कहाँ उत्सर्जन होता है वह निम्न है-

- जानवरों के जुगाली करने (चबाने) से
- धान के खेतों से
- पशुओं के गोबर से
- मशीनों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की सघनता के कारण
- बायोमास जलाने के कारण

भारत में मिथेन का उत्सर्जन

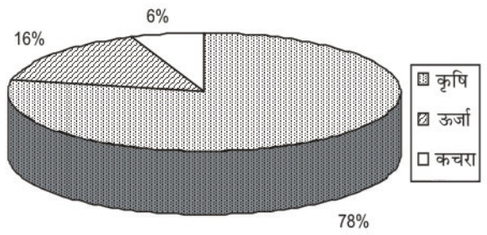

जलवायु परिवर्तन को बढ़ाते पशु

- ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में पशुओं की भूमिका भी है। पशुओं द्वारा 9 करोड़ मीट्रिक टन मिथेन 190 करोड़ मीट्रिक टन कार्बन आक्साइड और 1 करोड़ मीट्रिक टन नाइट्रस आक्साइड उत्सर्जित किया जाता है।
- सबसे ज्यादा समस्या इनकी जुगाली और गोबर के दुरूपयोग से होती है।

नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन

- खेतों में नाइट्रोजन की अत्यधिक मात्रा
- रसायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल से
- रसायनिक उर्वरकों के उत्पादन की प्रक्रिया से

> खेतों में उपयोग किये जाने वाला औसतन 50 प्रतिशत नाइट्रोजन वातावरण में नष्ट हो जाता है।

भारत में नाइट्रस आक्साइड का उत्सर्जन

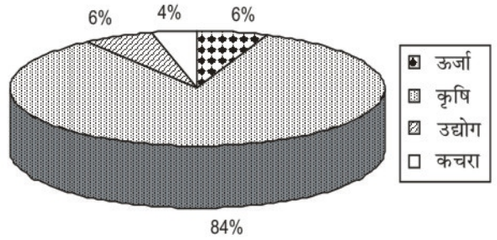

> भारत के ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में 6 प्रतिशत की भागीदारी रसायनिक खाद उत्पादन व उपयोग की है।

स्रोत : आई०पी०सी०सी० रिपोर्ट : 2007

> 100 किलो नाइट्रोजन खेतों में डालने से 1.25 किलो नाइट्रस आक्साइड का उत्सर्जन होता है।

कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन

कृषि क्षेत्र में कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन मुख्य रूप से फॉसिल फ्यूल के जलने, जंगलों के कटने व बायोमास के सड़ने से होता है।

जमीनों के उपयोग में फेर-बदल करने पर अथवा जंगलों को काटकर वहाँ रिहायशी क्षेत्र विकसित करने पर बहुत ज्यादा मात्रा में कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन होता है। पेड़ पौधों व वनस्पतियों के सड़ने से भी इस उत्सर्जन को बढ़ावा मिलता है।

फसल अवशेष जलाने का प्रभाव

भारत में फसल अवशेष को खेतों में जलाने की प्रक्रिया बहुत आम है। किसान को इसमें आसानी और पैसों की बचत दिखती है क्योंकि अनाज काट लेने के बाद खेतों की सफाई कराने में मजदूरी अधिक खर्च होती है। फसलों को कम्बाइन हारवेस्टर जैसी मशीनों से कटवाने पर पौधे का एक तिहाई हिस्सा खेतों में ही रह जाता है जिन्हें जड़ से उखाड़ कर खेत साफ करवाना एक कठिन प्रक्रिया है। इन अवशेषों का घर अथवा पशुशाला में कोई समुचित उपयोग भी नहीं किया जाता। इस प्रकार इसे जलाकर फिर खेतों की जुताई कर अगली फसल की तैयारी आसान हो जाती है।

फसल अवशेष को जलाने की प्रक्रिया खेती के लिए तो बेहद हानिकारक है ही साथ में वातावरण को प्रदूषित करने और ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

> हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 20 करोड़ टन धान व गेहूँ के अवशेष, जिनका मूल्य करोड़ों रूपये है जला दिया जाता है और इसके साथ ही प्रतिवर्ष नुकसान होता है-
> - 38.5 लाख टन जैविक कार्बन
> - 60,000 टन नाइट्रोजन
> - 2,000 टन फास्फोरस
> - 34,000 टन पोटेशियम

फसल अवशेषों को खेत में जलाने से मिट्टी की 1 सेमी० परत का तापमान 33.8से 42.2 सेटीग्रेट तक हो जाता है जिससे लाभदायक वैक्टीरिया व फंगस समाप्त होने लगते हैं। बार-बार जलाने की प्रक्रिया में 50 प्रतिशत से अधिक वैक्टीरिया समाप्त हो जाते हैं। लम्बे समय तक खेतों में अवशेष जलाने से मिट्टी की ऊपरी सतह में नाइट्रोजन और कार्बन की मात्रा कम हो जाती है और मिट्टी से जैविक तत्वों का ह्रास होता जाता है जिससे उसकी उर्वरता समाप्त होने लगती है।

भारत में धान और गेहूँ के अवशेष खेतों में जलाने से उत्पन्न गैसों का तुलनात्मक आंकड़ा

वर्ष	कार्बन डाई आक्साइड	कार्बन आक्साइड	नाइट्रस आक्साइड	नाइट्रिक आक्साइड
1994	102	2138	2.2	78
2000	110	2305	2.3	84

स्रोत : गुप्ता, पी०के० व अन्य : धान व गेहूँ की फसलों में फसल अवशेष को जलाना- 2004, 87, 1713-1715

एक टन भूसा जलाने पर 60 किलो कार्बन आक्साइड, 1460 किलो कार्बन डाईआक्साइड, 199 किलो राख और 2 किलो सोडियम आक्साइड निकलती है।

> अनाज वाली फसलों के अवशेष में 25 प्रतिशत नाइट्रोजन व फास्फोरस, 50 प्रतिशत सल्फर और 75 प्रतिशत कार्बन मौजूद होता है।

7

कैसे कम हो सकता है ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन?

कृषि क्षेत्र से होने वाले ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन कम करने का सबसे प्रभावी माध्यम है जैविक खेती। अनेक अध्ययनों व क्षेत्र परीक्षणों से यह साबित हो चुका है कि जैविक कृषि अपनाकर इन नुकसानदायक गैसों के उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है।

- जैविक खेती ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम कर सकती है
- जैविक खेती मिट्टी में कार्बन को अवशोषित कर सकती है

उपरोक्त दोनों बिन्दुओं पर जैविक खेती का अनेक क्षेत्रों में परीक्षण किया जा चुका है और आकड़े बताते हैं कि ऐसा निश्चित तौर पर होता है।

आधुनिक कृषि की तुलना में जैविक कृषि से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन बहुत कम मात्रा में होता है। बाढ़ क्षेत्र हो या सूखाग्रस्त क्षेत्र, स्थाई या जैविक कृषि से प्रति हेक्टेयर ज्यादा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। विशेषकर यदि पारम्परिक बीजों का इस्तेमाल किया जाय तो और बेहतर परिणाम देखे जा सकते हैं।

मिट्टी में कार्बन के एकत्रीकरण को जैविक खेती बहुत हद तक कम कर देती है इसमें अनेक अध्ययन किए गये जिसमें 80 प्रतिशत तक कमी पाई गई है। (क्यूस्टरमन व अन्य 2007)

नाइट्रोजन की भूमिका

आधुनिक कृषि में सबसे ज्यादा ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन रसायनिक उर्वरकों द्वारा होता है। विश्व में रसायनिक फर्टिलाइजर की खपत 2005 में 90.86 करोड़ टन थी। जबकि इसको तैयार करने में 90 करोड़ टन फासिल फ्यूल (डीजल आदि) जलाया गया जो जलवायु परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जैविक खेती नाइट्रोजन के लिए आत्म निर्भर है अर्थात इसमें पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन की उपलब्धता रहती है। मिश्रित खेती के साथ जानवरों के गोबर से तैयार खाद व फसल अवशेषों से तैयार खाद नाइट्रोजन पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न करती हैं।

इस प्रकार नाइट्रस आक्साइड जैसे खतरनाक गैस के उत्सर्जन को जैविक खेती ही कम कर सकती है। क्योंकि इनके उत्सर्जन का मुख्य स्रोत रसायनिक फर्टिलाइजर है। विविधता पूर्ण खेती, जैविक खाद, फसल चक्र, हरी खाद और दलहनी फसलें भी नाइट्रस आक्साइड के उत्सर्जन को बहुत कम करने की क्षमता रखती है जो कि जैविक या स्थाई खेती के मूल स्तम्भ हैं।

मीथेन का उत्सर्जन

कुल ग्रीन हाउस गैसों में मिथेन का प्रतिशत 14 है जिसमें दो तिहाई हिस्सा कृषि द्वारा उत्सर्जित होता है। जैविक अथवा स्थाई कृषि अपनाकर इसके प्रभाव को भी कम किया जा सकता है।

जानवरों की देशी प्रजातियाँ इसमें बहुत मददगार हैं। विशेषकर दुधारू गायों से व जानवरों के छोटे बच्चों (बछिया, पड़िया) से मिथेन का उत्सर्जन कम होता है।

जानवरों के गोबर के समुचित उपयोग से भी मिथेन उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है। धान के खेतों से निकलने वाली मिथेन गैस के लिए नई उन्नत प्रजातियाँ, जिनमें खेत में पानी का जमाव कम करना पड़े, उचित होंगीं। कम पानी वाले धान की खेती लाभदायक होगी।

कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन

जैविक खेती कार्बन को मिट्टी में अवशोषित करती है। मिट्टी के क्षरण से कार्बन का नुकसान होता है जो सीधे मिट्टी की उत्पादकता पर प्रभाव डालता है। जैविक खादों व खेती की विविधता से मिट्टी में कार्बन का उचित अनुपात बना रहता है।

खाद्य सुरक्षा के दृष्टिकोण से लोगों को अपने खान - पान के तौर तरीकों में भी बदलाव लाना होगा, जिससे रसायन आधारित खेती व विदेशी जानवरों की नस्लों में कमी आए और जलवायु परिवर्तन के दृष्टि से कृषि को सुरक्षित किया जा सके।

आई० पी० सी० सी० के चौथे आकलन रिपोर्ट में स्मिथ व अन्य ने (2007) कृषि क्षेत्र के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए जिनको लागू करके ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।

1- फसल चक्र व खेत का तंत्र

- फसलों की किस्मों को बढ़ावा
- फसल चक्र में बहुवर्षीय वृक्षों का सामञ्जस्य
- पौधों की क्यारियों के बीच जमीन पर फैलने वाली फसलें
- खेती का आत्मनिर्भर तंत्र विकसित करना

फसल की अधिक उत्पादकता एकल खेती से प्राप्त हो सकती है और यह पूरी तरह बाजार पर निर्भर खेती है विशेषकर बीज, रसायनिक खाद व कीटनाशक के सन्दर्भ में। स्थाई कृषि में किसान अपने स्वयं के तैयार किए लागत सामग्री का उपयोग करके खेती में खर्च भी कम करता है और लाभ भी ज्यादा कमाता है।स्थाई कृषि में धरती को पोषक तत्वों की पूर्ति मिट्टी से ही हो जाती है। क्योंकि जैविक खादों व दलहनी फसलों तथा साथ में वृक्षों के संयोजन से मिट्टी की सभी जरुरतें पूरी हो जाती हैं। उन्हें अतिरिक्त पोषक तत्वों की आवश्यकता नहीं रहती। स्थाई कृषि में उत्पादकता स्वयं ही बढ़ जाती है क्योंकि मिट्टी में स्वाभाविक रुप से सभी तत्व मौजूद होते हैं। जानवरों के गोबर द्वारा तैयार खाद, कृत्रिम खादों से कहीं बेहतर साबित होती है।

2- पोषक तत्व व खाद प्रबन्धन

- खेत में नाइट्रोजन को बढ़ाना
- फसल की आवश्यकता के अनुरुप ही खाद डालना
- नाइट्रोजन का इस्तेमाल फसल तैयार होने पर तथा मिट्टी की क्षमता के अनुरुप करना
- ज्यादा नाइट्रोजन का उपयोग न करना
- जुताई व फसल अवशेष का प्रबन्धन
- कम जुताई या जुताई नहीं करना

खेतों मे देशी खाद व नाइट्रोजन जनित पौधे लगाने से मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ती है और नाइट्रोजन का पुर्नचक्रीयकरण होता रहता है। समय प्रबन्धन इसमें बहुत महत्वपुर्ण होता है। आवश्यकता व मात्रा के अनुकूल ही नाइट्रोजन का प्रयोग करना चाहिए वरना यह गैस में तब्दील होकर उत्सर्जन करने लगता है।

अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है (निमिसेक व अन्य 2005) कि आधुनिक खेती की तुलना में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन जैविक खेती में 36 प्रतिशत कम होता है। इसी प्रकार इन दोनों खेती पद्धतियों में लागत व लाभ में भी स्पष्ट अंतर देखने को मिलता है।

रसायन आधारित खेती में लागत अधिक है और जलवायु परिवर्तन के लिए नुकसान भी अधिक है जबकि जैविक खेती में लागत भी कम है और नुकसान भी कम है। सटीक व उपयुक्त प्रयासों से इस नुकसान को और भी कम किया जा सकता है।

3. पशु - प्रबन्धन, चरागाह व चारे की उपलब्धता

- प्रजनन व उत्पादकता बढ़ाने हेतु
- दुधारु पशुओं में प्रजनन द्वारा कार्यक्षमता बढ़ाना
- देशी नस्लों को बढ़ावा
- चरागाह में दलहनी फसलें लगाना
- गोबर का उचित प्रबन्धन करना (बायोगैस या खाद बनाकर)

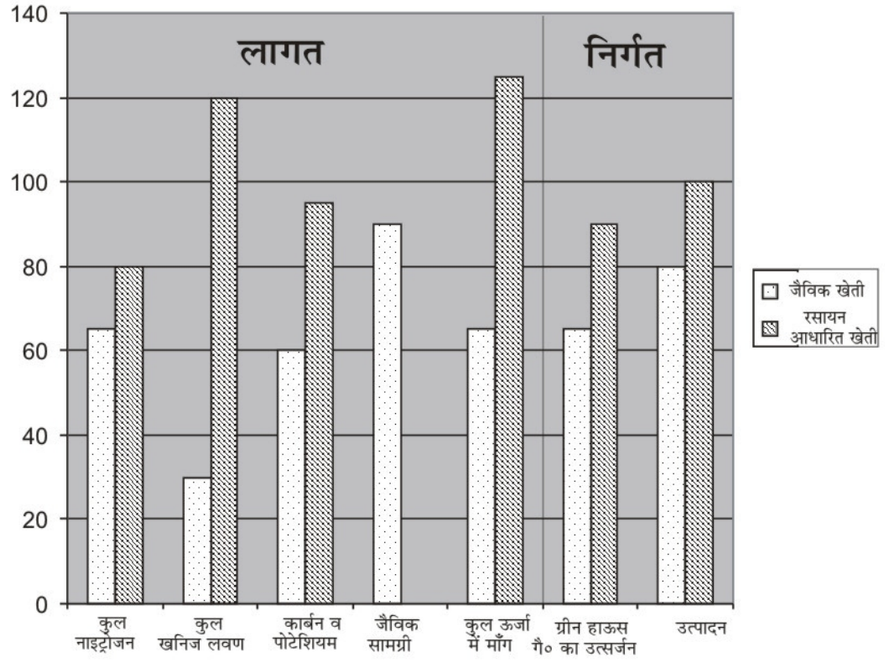

स्रोत : डॉक का क्षेत्र अनुसंधान- मेडर व अन्य, 2002

सभी ग्रीन हाउस गैसों में 14 प्रतिशत उत्सर्जन मिथेन गैस का होता है कहा जाता है कि इसमें जानवरों की प्रमुख भूमिका है। कृषि में स्थाईत्व के लिए पशु उसका एक आवश्यक अंग है तथा जैविक खेती के लिए एक अनिवार्य तंत्र, इसलिए खेती को जानवरों से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

जानवरों में चबाने या जुगाली करने की प्रक्रिया से मिथेन उत्सर्जित होता है जबकि इसका उनके पाचन तंत्र से सीधा सम्बन्ध होता है अत: इसमें रुकावट नहीं डाली जा सकती है। हाँ कुछ तरल पोषक तत्वों को देकर इनकी अवधि में कमी लाई जा सकती है। इनके गोबर को समुचित प्रबन्धन द्वारा अनेक प्रकार से उपयोग में लाया जा सकता है, जिससे इनके उत्सर्जन की प्रक्रिया कम हो जाये। बायोगैस व अनेक प्रकार की जैविक खादें खेती के लिए उपयोगी होती हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम करने के लिए देशी नस्लों को बढ़ावा देना होगा। विदेशी नस्लों के जानवरों की कार्यक्षमता व गर्मी, सर्दी, पानी सहन करने की क्षमता कम होती है। इन सबके प्रभाव से इनकी प्रजनन क्षमता व उत्पादकता पर सीधा असर पड़ता है। रोग व बीमारियाँ भी इन्हें ज्यादा होती हैं जिनका प्रभाव इनके अल्प जीवन के रुप में परिणत होता है। देशी नस्लें विशेष कर दुधारु गायों से मिथेन का उत्सर्जन कम होता है ऐसा कई अध्ययनों में पाया गया (कोची व म्यूलर - 2004) जानवरों के भोजन व उसके प्रकार में जो अन्तर होता है, वह मिथेन के उत्सर्जन हेतु उत्तरदायी है।

4. मिट्टी की उर्वरता बढ़ाना व बंजर भूमि का जीर्णोद्धार

- पोषक तत्वों द्वारा उर्वरता बढ़ाना
- देशी व जैविक खादों का प्रयोग
- मृदा संरक्षण तकनीक द्वारा मिट्टी के क्षरण व कार्बन व खनिजलवण के क्षरण को कम करना
- फसल अवशेषों से मल्चिंग करना
- पानी का संरक्षण
- मिट्टी के जैविक तत्व कार्बन का पृथक्करण

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में कृषि दो तरीके से महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है- एक तो ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करके, दूसरे वातावरण में से कार्बन डाईआक्साइड को मिट्टी में अवशोषित करके। जैविक कृषि, स्थाई कृषि, बिना जुताई के कृषि, कृषि वानिकी आदि ऐसी तकनीकें हैं जो कि मिट्टी के क्षरण को रोकती हैं और कार्बन के नुकसान को लाभ में परिवर्तित कर देती हैं।

जैविक खेती इन दोनों ही माध्यमों से जलवायु परिवर्तन में कमी लाने के लिए सक्षम है।

विभिन्न कृषि गतिविधियों द्वारा मिट्टी में कार्बन का पृथ्थकरण

गतिविधि	मिट्टी में कार्बन का अवशोषण (कि०ग्रा०/हे०)
कम्पोस्ट	1000 से 2000
बिना जुताई	100 से 500
फसल चक्र	0 से 200
खाद	000 से 1400
कवर + फसल चक्र	900 से 1400
कम्पोस्ट + कवर + फसल चक्र + बिना जुताई	2000 से 4000

जैविक खेती में जो सबसे महत्वपूर्ण आयाम है वह यह कि इसमें किसानों के ज्ञान और कौशल को प्राथमिकता दी जाती है। उसके निरीक्षण, अनुभव व अनुमानों को खेती का आधार माना जाता है इसीलिए बदलती परिस्थितियों में वह अपने ज्ञान व कौशल से सामञ्जस्य बैठा पाता है अथवा प्रयास कर पाता है, जबकि रसायन आधारित, बाजार पर निर्भर खेती में किसान अपने ज्ञान का समावेश नहीं कर पाता और नुकसान उठाने को मजबूर होता है।

प्रभाव कम करने के कुछ उपाय

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन से होने वाले प्रभावों को कम करने के लिए अनेक महत्वूर्ण कदम उठाने होंगे, जिनमें